JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

ब्रिटिश काल : नव समाज–अर्थतंत्र के संक्रमण में भारतीय किसान

श्वेता राज एवं डॉ0 नलिन विलोचन

[1]पीएच0 डी0 शोध छात्रा, इतिहास, बी0 आर0 अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

[2]प्राचार्य, एम0 एस0 के0 वी0 महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश : प्रायः माना जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों की कोई सार्थक भूमिका नहीं रही है, किंतु ऐसा नहीं है। भारतीय कृषक लगान की ऊँची दरों, अवैध करों, भेदभावपूर्ण बेदखली एवं जमींदारी क्षेत्रों में बेगार जैसी बुराईयों से त्रस्त थे। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में सरकार ने स्वयं किसानों पर भारी कर आरोपित कर दिये। इन विभिन्न कठिनाईयों के बोझ से दबे किसान, अपनी जीविका के एकमात्र साधन को बचाने के लिए महाजनों से ऋण लेने हेतु विवश हो जाते थे। ये महाजन उन्हें अत्यंत ऊँची दरों पर ऋण देकर उन्हें ऋण के जाल में फांस लेते थे। अनेक अवसरों पर तो किसानों को अपनी भूमि एवं पशु भी गिरवी रखने पड़ते थे। कभी–कभी ये सूदखोर या महाजन किसानों की गिरवी रखी गयी सम्पत्ति को भी जब्त कर लेते थे। भारतीय किसानों ने ब्रिटिश राज की स्थापना के समय से ही लगान की ऊँची दरों, अवैध करों, भेदभावपूर्ण बेदखली एवं जमींदारी क्षेत्रों में बेगार जैसी बुराईयों से त्रस्त होकर परजीवी बिचौलियों, लोभी साहूकारों, अधिकारियों के भ्रष्ट तौर–तरीकों और जमींदार–दरोगा गठजोड़ के विरूद्ध अपना विरोध प्रकट करना शुरू कर दिया था। ब्रिटिश राज में समय–समय पर होनेवाले तमाम किसान आंदोलनों ने न केवल देश के स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि अंग्रेजी सत्ता की नींव को भी झकझोर दिया था।

शब्द कुंजी : ब्रिटिश शासन, अर्थतंत्र, लगान, जमींदारी प्रथा, भारतीय किसान।

किसान अनादि काल से गांवों में रहता आया है। गांवों का अपना अतीत रहा है। यह अतीत आज की स्थिति से भिन्न था। वैसे तो प्रसिद्ध तथा समृद्ध नगर भी होते रहे हैं, तथापि सामाजिक संगठन की मूल भिति ग्राम समुदाय ही था। वह आत्मपूरित होता था। स्वयं में एक व्यवस्था था। सुखमय एवं सर्वाधिक स्वाधीन था। सर चार्ल्स मैटफॉक ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है कि ग्राम–सुदाय लघु गणराज्य थे। वह आवश्यकता की सारी वस्तुएँ पैछा करते थे। वैदेशिक संबंधों से स्वतंत्र थे। जहाँ अन्य संस्थाएँ जीवित न रहीं, वहाँ ग्रामीण व्यवस्था सदियों तक टिकाऊ रही।

ग्राम की चतुर्दिक भूमि पर किसान खेती करता था। भूमि में निजी स्वामित्व नहीं वरन् सामान्य स्वामित्व था। सामाजिक स्तरीकरण के अनुरूप उत्पादन सभी में विभाजित होता था। सामान्यतः भूमि 'जोतों में विभक्त होती थी। एक 'जोत' पर एक परिवार की निहिताधिकार एवं मौगाधिकार था। ग्राम समुदाय के पास एक मौलिक सामाजिक–प्रशासनिक इकाई थी – वह थी ग्राम पंचायत। उसे प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकार उपलब्ध थे। वह भूमि का वितरण करती थी। कर संग्रह करती और राज्य का अंश चुकाती थी। विविध सामाजिक प्रबंध करती तथा ग्रामीणों के विवादों का निबटारा भी करती थी, स्थायित्व का आधार थी।

प्राचीन भारत में भूधृति या भूमि–स्वामित्व पद्धति के प्रश्न पर विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ भूमि पर ग्राम समुदाय के स्वामित्व का पक्ष प्रस्तुत करते है। दूसरे, राजा के स्वामित्व की चर्चा करते हैं। स्वामित्व को राजा तथा किसानों के मध्य अनुबंधित मानते हैं। कुछ तर्क देते हैं कि भूमि निजी संपत्ति थी और किसान–स्वामित्व की भी व्यवस्था थी। वे

अपने–अपने पक्षों की पुष्टि में प्राचीन शास्त्रों का उद्धरण देते हैं। इतना माना जा सकता है कि भूमि पर राज्य या राजा की शक्ति सीमित थी।

मुस्लिम काल में भूमि–प्रबंध परिवर्तित हुआ। शेरशाह तथा अकबर के शासन में भूमि सर्वीक्षित एवं वर्गीकृत हुई। नई बंदोबस्तियाँ भी हुई। फिर भी भूमि संबंधों में एकरूपता न थी। लगान का निर्धारण हुआ, उसे क्रमबद्ध तथा मानवीकृत किया गया। किन्तु औरंगजेब के काल में संपूर्ण गांव इकाई बना दिया गया। लगान मौसम में बसूला जाता था और 'निरिख' (एक राशि) से अधिक नहीं बढ़ता था। सामान्यतः लगान उगाही मुद्रा में हुई। मुद्रा लगान से साहूकारी बढ़ी, यदाक्दा भूमि नीलाम भी हुई। प्रायः लगान न चुकाने पर किसान शारीरिक दंड पाता था किन्तु भूमि से बेदखल नहीं होता था। भूमि का अधिकार संप्रभु में निहित हुआ, परन्तु खेतिहर किसान का भूमि संबंधी भोगाधिकार यथावत रहा। किसान ओर राजा के मध्य स्थानीय लगान उगाही कर्मी के रूप में जमींदार–जागीरदार सदृश मध्यक आ गये। भूमीय कुलीन तंत्र पैदा हुआ। किन्तु ये मध्यक यूरोप के मध्यक की भांति न थे और भारतीय सामंतवाद यूरोपीय सामंतवाद के समान न था। मुगल साम्राज्य के अंतिम काल में विलासप्रिय कुलीनतंत्र ने किसानों का अनवरूद्ध शोषण किया। भूमिधारी वर्ग, प्रभावकारी हुआ और ग्रामीण मुखिया किसानों से सशक्त। वह जनता का सेवक न रहकर प्रशासन का अंग हो गया। लगान में वृद्धि कर दी गयी। अकबर के काल में फसल का एक तिहाई भाग लिया जाता था, औरंगजेब के काल में अर्द्धभाग लिया जाने लगा। अधिकृत–अनाधिकृत, उपकर, उद्ग्रहण तथा अब्वाब उगाये गये। राजस्व अभिकर्त्ताओं की निरंकुशता बढ़ी, अकाल आदि भी पड़े।

उत्पीड़न से किसानों में असंतोष बढ़ा। उनकी दुख–दारिद्रय से उत्पीड़न की अभिव्यक्ति इस बात में होती है कि जहां–जहां सत्ताविरोधी संघर्ष हुए किसानों ने उनका साथ दिया। जाट, सिक्ख, मराठा या सतनामी विद्रोह इसके साक्षी हैं। किन्तु जन–विद्रोह की परिणति एक सामंत के स्थान पर दूसरे सामंत की प्रतिस्थापना में हुई। स्फुट विद्रोह में सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष के नेतृत्वकारी वर्ग–मध्यमवर्ग की अनुपस्थिति थी। प्रो0 इरफान हबीब के शब्दों में दो शोषकों – संप्रभु एवं सामंतों में संघर्ष होते थे। शोषितों का विद्रोह उनमें समाहित हो जाता था। ऐसा होना निर्णायक महत्व का है।

ब्रिटिश शासन में भूराजस्व की दृष्टि से तीन भूमिपद्धतियां प्रचलित हुई। वे थीं जमींदारी, रैयतवारी तथा महालवारी प्रथाएं। इनमें भुगतान के घटन हुए क्रमशः जमींदार, वैयक्तिक किसान और ग्राम–समुदाय। ब्रिटिश भारत का 19 प्रतिशत भाग स्थायी प्रबंध, 30 प्रतिशत अस्थायी प्रबंध तथा 51 प्रतिशत रैयतवारी और महालवारी प्रथाओं के अन्तर्गत था।

जमींदारी प्रथा स्थायी : लार्ड कार्नवालिस द्वारा 1793 में प्रस्थापित स्थायी प्रबंध बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा के कुछ भाग, मद्रास के उत्तरी सरकारी और कुछ भाग एवं युक्तप्रांत के बनारस में प्रचलित थी। भूराजस्व के संग्रहकर्त्ता जमींदार बने। जमींदार द्वारा सरकार को सदा के लिए राजस्व भुगतान निर्धारित हुआ। कितुं किसानों का लगान निश्चित न था। यह जमींदारों पर छोड़ दिया गया। उन्होंने मनचाही बन्दोबस्तियां कीं। सूखा, बाढ़ या अन्य आपदाओं के समय लगान–परिहार की सुविधा न रही। समान लगान एवं ग्रामीण अभिलेख भी न रहा। किसानों को लगान देने में कठिनाई पड़ी। इस व्यवस्था में अनकों त्रुटियों के बावजूद स्थिति में बहुत परिवर्तन नहीं हुआ। इस प्रथा की बुराईयों का विवरण देते हुए बंगाल भूराजस्व आयोग (1940) ने इस प्रथा के अंत की मांग की थी। परिस्थिति ऐसी थी कि कीमत बढ़ने पर भी जमींदार ही खुशहाल हुआ, किसान नहीं।

जमींदारी प्रथा अस्थायी : भूमि में शहरीकरण की गति से लाभ जमींदार को हुआ ओर हानि सरकार की। प्रफलतः युक्तप्रांत एवं बंगाल तथा बम्बई के कुछ भागों में जमींदारी प्रथा को अस्थायी रूप से लागू किया गया। वहाँ आवधिक पुनरीक्षण होता था। प्रत्येक पुनरीक्षण पर राजस्ववृद्धि का अधिकार सरकार को था।

रैयतवारी प्रथा : इस प्रथा में भूमि राज्य की थी। किसान भूमिधारक की उपाधि (स्वामित्वाधिकार) पाता था। भूमि को बंधक रखने, विक्रय करने, पट्टे पर देने, हस्तान्तरण करने और दान देने का अधिकार रखता था। उसे माकि–किसान कहा गया। उसे प्रत्येक जोत पर विलगशः राजस्व देना था। भूमि का अनुमानित अर्थ कर निर्धारण का आधार था। भूमि की आवधिक बंदोबस्ती पर सरकार को राजस्व वृद्धि का अधिकार था। इसका उद्देश्य अधिकाधिक लगान लेना था।

महालवारी प्रथा : संयुक्त ग्राम पद्धति या महालवारी प्रथा बागरा आदि (युंक्तप्रांत) और पंजाब (1833–48) में प्रचलित की गयी। हाल्ट मैकेंजी प्रवर्तक थे। इस प्रणाली के अन्तर्गत संबंधित गांव इकाई थे। भूमि में किसानों का सामूहिक स्वामित्व था। गांव का चयित व्यक्ति–प्रमुख राजस्व भुगतान का दायी था। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए खेती करना था।

ब्रिटिश भूराजस्व पद्धतियों का परिणाम यह हुआ कि भूमि निजी संपत्ति हुई। बड़े निजी भू–स्वामी का उदय हुआ। जमींदारी में किसान काश्तकार था और रैयतवारी में शिकमी काश्तकार। जैसा इस संबंध में 1948 में युक्तप्रांतीय जमींदारी निर्मूलन समिति ने कहा था कि इन बंदोबस्तियों द्वारा लाखों व्यक्ति उन अधिकारों से वंचित हुए जिन्हें उन्होंने दो हजार वर्षों से प्राप्त कर रखा था। भूमि के वंशानुगत खेतिहर स्वामी अत्यधिक लगान–बौफिल शिकमी काश्तकार हो गये। स्थिति ऐसी हो गयी कि आर्थिक स्थिति खराब हई, कृषि में ह्रास हुआ। निरंतर सामाजिक झगड़े हुए। सामंतवाद और किसानों के मध्य संघर्ष हुए।

फुलोरेंस नाइटिंगल ने कहा है कि हमारे पूर्वी साम्राज्य का किसान दुनियां में दर्द भरा नजारा है। वस्तुतः भारतीय किसान दिनानुदिन दरिद्र होता गया। तीव्रतः उसकी ऋण ग्रस्तता की गतिदर बढ़ती गयी। वे तेजी के साथ अपनी भूमि से वंचित हुए। वे या तो कंगाल हुए अथवा कृषिक श्रमिक। ए0 आर0 देसाई के शब्दों में भारतीय कृषिक व्यवस्था का इतिहास ऐसा रहा।

1. वि–उद्योगीकरण : ब्रिटिश औद्योगिक पूंजीवाद ने भारत को कच्चे पदार्थों के स्रोत और ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का बाजार बनाया। फलतः शनैः शनैः बुनाई, रंगाई तथा हाथकताई के प्राचीन कुटीर उद्योग समाप्त हुए एवं वि–उद्यौगीकरण प्रारंभ हुआ। परिणामतः (अ) वृत्तिहीन दस्तकार खेती की तरफ गये जहाँ कहीं भी जिस किसी शर्त पर खेत मिला, खेती की। खेती पर जनभार बढ़ा। (ब) कृषि एवं उद्योग की एकता भंग हुई। कुटीर उद्योग से प्राप्त किसान की अतिरिक्त आय बंद हो गयी। (स) कृषि जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन रह गयी। विकल्प वृत्ति के अभाव में किसान को छः माह बेरोजगार रहना पड़ा। साथ ही नये शहरों के नये वृत्तिकार अपनी बचत भूमि में लगाकर नये (दूरवासी) जमींदार बने। भूमीय कुलीनता बढ़ी। भूमि में प्रतियोगिता एवं सट्टेबाजी बढ़ गयी।

2. मुद्रा–अर्थतंत्र : भूमि से उत्पादित वस्तुओं का अधिकांश उपभोग गांव या पड़ोसी गाँवों में होता था। उपभौकता सामग्रियों का बहुलांश उत्पादन स्थानिक था। वस्तु–विनिमय प्रणाली थी। औपनिवेशिक शासक ने उसे समाप्त किया। शनैः–शनैः मुद्रा अर्थतंत्र आया। भुगतान एवं विनिमय का माध्यम मुद्रा हुई। लगान और सेवाओं का पारिश्रमिक नकद दिया जाने लगा। उपभोक्ता सामग्री भी नकद खरीदी जाने लगी। विशेषतः फसल कटने के शीघ्र बाद लगान–भूराजस्व नकद चुकाना था, अस्तु मुद्रा की मांग बढ़ गयी। सामग्री संचालन हेतु एक नया आर्थिक तत्व आया। फसल तैयार होते ही किसान बाजार गया। जो भी कीमत मिली, उत्पादन का अधिकांश भाग बेच आया। छः महीने बाद अपने भोजन आदि के लिए उसी के कुछ भाग को खरीदने गया। निश्चयतः अब कीमत ऊँची हो गयी थी। यह स्थिति किसान के लिए विनाशक थी। वह ऋण में डूब गया।

3. साहूकार : किसान को लगान निश्चित समय पर निश्चित राशि में भुगतान करना था। चूँकि अपनी फसल को द्रव्य में बदलने में कठिनाई पाता था, अतः उसे अल्पकालिक ऋण चाहिए था, साख की सरकारी व्यवस्था की नहीं। वह दुकानदारों के पास मुद्रा के लिए गया। जमीन बंधक रखकर उसने ऋण पाया। वह मुद्रा के व्यवहार से अपरिचित था। साहूकारी ब्याजदर के प्रभाव को नहीं समझ सका। पहले ग्राम समुदाय में ऋण के लिए भूमि की जमानत या क्रय–विक्रय नहीं होता था। अब संविदा कानूनों पर आधारित ऐसी विधिक पद्धति आयी जिसमें ऋण वसूलने के लिए भूमि का हस्तांतरण हुआ। राबर्ट आई0 ब्रेने के शब्दों में साहूकार जमींदारी में अध्यक हुआ और रैयतदारी में गैर कृषिकार वर्ग। दोनों में किसान भूमि से वंचित हुआ। लगान की अतिरिक्त मांगे थीं। किसान ऊंचा लगान देता था। वस्तुतः वह फसल बंटाईदार था। वह इतना असुरक्षित था कि वर्ष भर काम करता किन्तु जीवनयापन के लिए साहूकार पर आश्रित था। खेती करने का उपक्रम जाता रहा। शीघ्र ही किसान निःसहायतः ऋणग्रस्तता के तरंगवृत्त में आ गया और साख की मांग बढ़ गयी।

4. बाजार : किसानों को औद्योगिक वस्तुएं खरीदनी पड़ती थी। ये कृषिक वस्तुओं से मंहगी थी। बाजार का मध्यक गांव का बनिया था। गांव का दो तिहाई उत्पादन यही खरीदता था। यह साख और बाजार की अभिकर्त्ता था। दुधारी तलवार की भांति शोषण करता था। गरीब किसानों को ऊँचे ब्याज पर ऋण देता था और उनकी फसल नीची कीमत पर खरीदता था। साहूकार पूर्णतः साहलक था। लाला मुरलीधर ने कहा है कि उसे शेर का पंजा, लोमड़ी का दिमाग तथा बकरी का दिल था। वह मद्रा अपहर्त्ता था। अमानवीय रक्त शोषक था – एक ऐसा व्यक्ति जो किसानों का रक्त शोषण करता था।

साहूकारी–वयापारी का ऋणग्रस्त किसान अर्द्ध क्रय–विक्रय की स्थिति में था। साहूकारी शोषण ऐसा था कि फसलें यदाकदा कटने से पहले ही बंधक रख दी जाती थीं। साहूकार ही उसकी फसल खरीदता था। किसान के लिए कोई विकल्प न था। वह ऋण के लिए साहूकार से अनुरोध करता था और उसकी शर्त्तों (आदेशों) का पालन करता था। अस्तु लाभप्रद समय, स्थान तथा शर्त पर क्रय–विक्रय की स्वतंत्रता से वंचित रह जाता था। यह स्थिति भारतीय किसान की विपणन समस्या का रहस्त उद्घाटित करती है। प्रायः बनिया अपनी वस्तु बाजार की कीमत से रूपये में आधा आना अधिक पर बेंचता और दूसरे की वस्तु को ठीक उसी प्रकार कम पर खरीदता था। तौल के अनुचित साधनों एवं उपाय का अवलंब लेता था। किसानों से विधिक अधिशुल्क भी लेता था। मुनाफा का बड़ा भाग वह ले लेता था।

5. व्यावसायिक फसलें : यद्यपि कृषिक उत्पादन में खाद्यान्न का प्रामुख्य था तथापि एक नयी वस्तु द्रव्यान्न उत्पादित होने लगी। व्यावसायिक फसलों का उत्पादन और विश्वबाजार पर निर्भरता बढ़ी। कृषि का आधार बदला। बाजार के उत्पादन के लिए विशिष्ट फसलों (कपास, गन्ना, जूट, तेलहन) आदि के विशिष्ट क्षेत्र (दक्कन, बंगाल आदि) बन गये। किसान पुराने उपकरणों के साथ अनार्थिक जोत पर काम करता था। नेहरू के शब्दों में वह विश्वव्यापी उत्पादन एवं कीमतों के भंवर में फंसता गया और डूबता गया। प्रस्तुत दृष्टांत स्थिति को स्पष्ट करता है।

अमेरिकी गृह युद्ध के दौरान महाराष्ट्र के किसानों ने लंकाशायर की मिलों के लिए ऊँची कीमत के कारण कपास का उत्पादन लाभकर पाया। कपास का उत्पादन व्यय–साध्य था, ऋण लेकर उसकी खेती की। खाद्यान्न का उत्पादन न कर सके, उँची कीमत पर उसे खरीदा। इसके लिए भी ऋण लिया। मुनाफा देखकर सरकार ने लगान बढ़ा दिया। उधर गृहयुद्ध समाप्त हुआ। अमेरिका से इंग्लैंड को कपास गया। भारतीय कपास की कीमत गिरी। किसानों की आय घट गयी, ऊँचे लगान का बकाया रह गया। अलाभकर स्थिति में साहूकारों ने ऋण भी नहीं दिया। एक तरफ, किसानों की आय में कमी, ऋणग्रस्तता तथा भूखमरी थी और दूसरी तरफ बकाये लगान एवं ऋण के भुगतान का प्रश्न। जमीन तेजी से बंधक रखी जाने लगी। स्थिति गंभीर हो गयी। कहा जाता है, साहूकारी के विरूद्ध दक्कन के किसानों का विद्रोह (1871–85) इसी का प्रतिफलन है।

संदर्भ सूची :–

[1] देसाई, ए. आर. : सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिस्म, बॉम्बे, 1948, पृ० 43.

[2] गडगिल, डी. आर. : इन्डस्ट्रीयल इभोलूशन ऑफ इंडिया इन रिसेंट टाईम्स, बॉम्बे, 1971, पृ० 161

[3] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास – गिरीश मिश्र, ग्रन्थ शिल्पी (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1997 ई0।

[4] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (1850 – 1947 ई0) – सब्यसाची भट्टाचार्य, दि मैकमिलन कम्पनी ऑव इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, सन् 1990 ई0।

[5] राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास – मन्मथ नाथ गुप्त, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पुनः मुद्रित, सन् 2000 ई0।

[6] राष्ट्रीय आन्दोलन का ज्वलंत इतिहास – आर0 सी0 अग्रवाल, एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, पुनः मुद्रित, सन् 2002 ई0।

[7] स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य – रामविलास शर्मा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पुनर्मुद्रण, सन् 2003 ई0।